अध्याय ३

प्रहृष्टमुदितो लोकः

महान् राजाओं के महान् यज्ञ : रामायण

अपने द्वार से किसी को भूखा-प्यासा अथवा निराश्रय न लौटाने के व्रत, न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत, का विधान करने से पूर्व तैत्तिरीयोपनिषद् में एक अन्य व्रत का उपदेश दिया गया है। वह व्रत है –

> अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्।[१]
>
> अन्नबाहुल्य की व्यवस्था करें। यह व्रत है, मानव जीवन की यह अनुल्लङ्घनीय मर्यादा है।

श्रुतिवाक्य में प्रतिपादित इस सुस्पष्ट मर्यादा में बद्ध भारतीय परम्परा के सभी महान् राजा अन्न की बहुलता सुनिश्चित करने और सभी के लिये प्रचुर अन्न का प्रबन्ध करने के सतत प्रयास और चिन्ता में रत दिखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि महान् राजाओं के राज्य में सब स्थानों पर सदा ही अन्नदान चलता रहता है, कहीं कोई अर्थी भूखा-प्यासा या निराश्रय नहीं रहता। महान् राजाओं के महान् यज्ञ तो विशेषतः दीर्घकाल तक चलने वाले उदार एवं भव्य अन्नदान के उत्सव-से ही दिखते हैं।

महान् राजाओं के महान् यज्ञों में निश्चय ही निर्बाध अन्नदान के अतिरिक्त और भी बहुत कुछ घटता है। महान् यज्ञ राजधानी में आकृष्ट होने वाली सब प्रकार की धन-सम्पदा को पुनः राष्ट्र में विसर्जित करने के उत्सव होते हैं। समय-समय पर ऐसे विसर्जन का आयोजन करते रहना भारतीय राजनैतिक परम्परा की मुख्य प्रवृत्तियों में से एक है। महान् राजाओं के महान् यज्ञ सम्पूर्ण

[१] तैत्तिरीयोपनिषद् ३.९, पृ.२२९।

Centre for Policy Studies www.cpsindia.org

भारतवर्ष में पनप रहे सब प्रकार के कला-कौशल, सब प्रकार के शिल्प और सब प्रकार की विद्वत्ता के प्रदर्शन एवं सम्मान का अवसर भी होते हैं। इन यज्ञों में भारतवर्ष के कोने-कोने से शिल्पी, स्थपति, काष्ठकार और धातुकार पहुँचकर अपने शिल्प व कार्यकौशल का परिचय देते हैं, और दूर-दूर से सम्मानित विद्वान्, कवि और वैयाकरण आकर एक-दूसरे से सीखने और एक-दूसरे की विद्वत्ता आँकने का अवसर पाते हैं।

आर्ष साहित्य में अत्यन्त सम्मान एवं विस्तार से वर्णित महान् राजाओं के ये महान् यज्ञ भारतवर्ष की भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अस्मिता की भव्य अभिव्यक्ति के उत्सव भी होते हैं। समस्त राजकुलों के राजा और राजकुमार, समस्त जनपदों के सम्मानित अग्रजन, समस्त जातियों और समुदायों के प्रमुख, विभिन्न विषयों के सर्वोत्तम पण्डित, विभिन्न विधाओं के दक्ष साधक, सब-के-सब इन यज्ञों में एकत्रित होते हैं। भारतीय परम्परा में यह माना जाता है कि राजशक्ति अनेक राजकुलों, अनेक जनपदों, अनेक समुदायों में बँटकर और विभिन्न विद्याओं और विधाओं के अनेक साधकों द्वारा पोषित होकर ही धर्म की मर्यादा में स्थापित रह सकती है। महान् राजाओं के महान् यज्ञों में राजशक्ति के धारक और पोषक विभिन्न लोगों का एकत्र होना इस तथ्य का प्रमाण है कि राजशक्ति के इस प्रकार अनेक केन्द्रों में विभाजित होते हुए भी भारतवर्ष अविभाज्य रहता है।

भारतीय परम्परा के ये महान् यज्ञ भारतवर्ष की गहनतम प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति के महोत्सव हैं। और आर्ष साहित्य में पाये जाने वाले इन यज्ञों के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि इन महोत्सवों का केन्द्रीय उत्सव अन्नदान ही होता है। इन महान् यज्ञों में अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटती हैं और उनमें से कुछ तो काल के नई दिशा लेने की ही सूचक होती हैं। परन्तु ये इतनी महत्त्वपूर्ण घटनाएँ भव्य और निर्बाध अन्नदान की पृष्ठभूमि में ही घटती दिखायी देती हैं। महान् यज्ञ का शायद अर्थ ही महान् अन्नदान है। अकेले अन्नदान को तो यज्ञ की संज्ञा दी जा सकती है, परन्तु अन्नदान के बिना किसी महान् यज्ञ का सम्पन्न होना शायद असम्भव ही है।

श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ

श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ आर्ष साहित्य में वर्णित भव्यतम यज्ञों में से एक है। श्रीराम अपने राज्य के चरमोत्कर्ष पर इस यज्ञ का अनुष्ठान करते हैं और इस यज्ञ के सम्पन्न होने पर पृथिवी-पुत्री सीता पुनः अपनी माँ की गोद में समा जाती हैं। यह श्रीराम के इस पृथिवी पर गमन की

प्रायः अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटना है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में इस यज्ञ के उपरान्त केवल एक बड़ी घटना का वर्णन आता है, जब श्रीराम अपने भाइयों और सभी पुरवासियों के साथ पुण्यसलिला सरयू के जल में प्रवेश कर अपने परमधाम के लिये प्रस्थान करते हैं।

अगस्त्य मुनि से राजा श्वेत की कथा सुनकर अयोध्या लौटते ही श्रीराम इस यज्ञ का अनुष्ठान करने का उपक्रम करने लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अयोध्या पहुँचने से पहले ही वे कोई बड़ा यज्ञ करने का मन बना लेते हैं। अगस्त्य मुनि के आश्रम से उड़कर उनका पुष्पकविमान सीधे अयोध्यापुरी के मध्यवर्ती प्राङ्गण में उतरता है। विमान से उतरकर श्रीराम तुरन्त उसे विदा करते हैं और द्वारपाल को आदेश देते हैं कि भरत एवं लक्ष्मण को बुला लाये। भरत एवं लक्ष्मण के आते ही वे प्रायः बिना किसी भूमिका के उन्हें कोई महान् यज्ञ करने के अपने निश्चय से अवगत करवाते हैं।

भाइयों में इस विषय पर कुछ चर्चा होती है कि श्रीराम को राजसूय यज्ञ का अनुष्ठान करना चाहिये या अश्वमेध का। प्रारम्भ में श्रीराम राजसूय यज्ञ करने की इच्छा प्रकट करते हैं। तब भरत उन्हें स्मरण कराते हैं कि राजसूय यज्ञ से सभी राजवंशों का विनाश होने और पृथिवी पर पुरुषार्थ का अभाव होने की सम्भावना रहती है। श्रीराम तो राजकुलों के संवर्धक और शूरवीरों के ही नहीं अपितु सभी जीवों के संरक्षक हैं। सभी राजा और समस्त जीव उन्हें अपने पिता समान मानते हैं। वे ऐसा यज्ञ कैसे कर सकते हैं जिससे राजकुल तिरोहित हों, पुरुषार्थ का अभाव हो और जीवों का विनाश हो?

भाइयों के मध्य का यह वार्तालाप कदाचित् यह स्मरण कराने के लिये ही है कि भारतीय परम्परा के आदर्श राज्य रामराज्य में शक्ति का सङ्कुचन नहीं अपितु व्यास होता है। श्रीराम का तो यह सहज गुण ही है कि जब वे राज्य करते हैं तो राजवंश शतगुण वृद्धि को प्राप्त होते हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के प्रथम अध्याय में ही कहा गया है – राजवंशाञ्छतगुणान् स्थापयिष्यति राघवः।[२]

अन्ततः श्रीराम अश्वमेध यज्ञ करने का निर्णय लेते हैं। इस यज्ञ के सम्पन्न होने से पूर्व उनके यज्ञ का अश्व लक्ष्मण के संरक्षण में पृथिवी पर विचरण करता हुआ सभी राजाओं के राज्य में पहुँचकर उन सब का सत्कार प्राप्त करता है। इस प्रकार श्रीराम जैसे आदर्श राजा के यज्ञ के अश्व का सत्कार करने से राजाओं के गौरव में वृद्धि ही होती है, उनकी शक्ति का ह्रास नहीं।

अश्वमेघ यज्ञ का अनुष्ठान करने का निर्णय होते ही श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि वे वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि और काश्यप आदि सभी श्रेष्ठ द्विजों को बुला लायें। इन सब के आने पर

[२] रामायण *बाल* १.९६, पृ.३०।

श्रीराम विनयपूर्वक उन्हें अश्वमेघ यज्ञ करने के अपने निश्चय से अवगत कराते हैं और उनका आशीर्वाद पाकर वे यज्ञ के आयोजन में जुट जाते हैं।

उपक्रम

यज्ञ के आयोजन का उपक्रम करते हुए सर्वप्रथम श्रीराम लक्ष्मण से अपने प्रिय मित्र वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषण को बुला भेजने का आग्रह करते हैं। मानवेतर साम्राज्यों के ये महान् राजा श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में आतिथेय का दायित्व सँभालते हैं।

तब श्रीराम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि सभी राजाओं को, सभी ब्राह्मणों, ऋषियों और तपस्वियों को, सभी विद्वानों को, सभी रङ्गकर्मियों, नटों व नर्तकों को बुला लिया जाये। देश-विदेश से ये सब लोग आयें, और अपने सेवकों, अनुयायिओं और स्त्रियों को साथ लेकर आयें।

इसके उपरान्त श्रीराम लक्ष्मण से कहते हैं कि वे नैमिषारण्य में गोमती के तट पर विशाल यज्ञमण्डप बनवाने का प्रबन्ध करें, यज्ञभूमि में सैकड़ों धर्मज्ञ लोगों को बुलायें और तुरन्त यज्ञ की निर्विघ्न समाप्ति के लिये शान्तिकर्म आरम्भ करवायें।

ये सब प्रबन्ध पूरे होने पर श्रीराम लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे शीघ्र ही सब लोगों को आमन्त्रित करें और यह सुनिश्चित करें कि यज्ञभूमि में जो भी आये वह तुष्ट, पुष्ट और मानित होकर लौटे। यहाँ श्रीराम विशेषतः सब को, बिना किसी विशेषण के समस्त जनों को, बुलाने और सभी को सत्कृत एवं सम्मानित करने का आग्रह करते हैं। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के शब्दों में श्रीराम का आदेश है –

तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽसौ मानितश्च यथाविधि।
प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्त्र्यतां जनः ॥[३]

सभी लोगों को इस प्रकार तुष्ट-पुष्ट करने के लिये बड़ी मात्रा में भोजन का प्रबन्ध होना आवश्यक है। इसलिये श्रीराम यज्ञ के लिये जुटाये जाने वाले भण्डार के बारे में स्पष्ट और विस्तृत निर्देश देते हुए कहते हैं –

शतं वाहसहस्राणां तण्डुलानां वपुष्मताम्।
अयुतं तिलमुद्गस्य प्रयात्वग्रे महाबल।

[३] रामायण उत्तर९१.१८, पृ.१६४९।

चणकानां कुलित्थानां माषाणां लवणस्य च।
अतोऽनुरूपं स्नेहं च गन्धं संक्षिप्तमेव च ।।[४]

महाबल लक्ष्मण! लाखों बोझे उत्कृष्ट अनाज और दसियों सहस्र बोझे तिल, मूंग, चना, कुलत्थी, उड़द और लवण, इस सब के अनुरूप मात्रा में घी-तेल और सुगन्धित पदार्थ पहले ही यज्ञभूमि में भेजे जायें।

श्रीराम का आदेश था कि इस सारे भण्डार और स्वर्ण एवं हिरण्य की शतकोटि से भी अधिक मुद्राओं से लदे पशु आगे-आगे चलें। उनके पीछे पाकशास्त्रियों, नट-नर्तकों, शिल्पियों, वणिकों, कोषाध्यक्षों, वैदिकों, पुरोहितों आदि का बड़ा समूह हो। उनके साथ ही अयोध्या के बड़े-बूढ़े, स्त्रियाँ और बच्चे प्रस्थान करें। भरत एवं उनकी सेनाएँ इस सारे भण्डार, धन-सम्पदा और जनसमूह का मार्गरक्षण करते हुए सबसे पहले इन्हीं को यज्ञभूमि में पहुँचायें।

अन्नदान

भरत के नैमिषारण्य पहुँचते ही वहाँ अन्नदान प्रारम्भ हो जाता है। तुरन्त वानरराज सुग्रीव अपनी वानर सेनाओं के साथ अन्न परोसने के काम में जुट जाते हैं, और राक्षसराज विभीषण व उनकी राक्षस सेनाएँ अयोध्या की स्त्रियों के साथ मिलकर आने वालों का स्वागत-सत्कार करने के लिये खड़ी हो जाती हैं।

इस प्रकार सब प्रबन्ध पूरे होने और अन्नदान प्रारम्भ होने के उपरान्त ही श्रीराम यज्ञ का अश्व छोड़ते हैं। शुभ लक्षणों से युक्त एवं कृष्ण मृग सी आभा वाले इस अश्व की रक्षा के लिये लक्ष्मण को नियुक्त कर श्रीराम स्वयं भी नैमिषारण्य के लिये प्रस्थान करते हैं।

श्रीराम का यह यज्ञ एक वर्ष से भी अधिक अवधि पर्यन्त चलता है। इस पूरी अवधि में श्रीराम नैमिषारण्य में ही निवास करते हैं। इस बीच पृथिवी के समस्त नरेश अनेक उपहार लेकर यज्ञ में भाग लेने के लिये पहुँचते हैं। श्रीराम स्वयं उनका सम्मान-सत्कार करते हैं, उनसे उपहार स्वीकार करते हैं और उन्हें अन्नपान एवं वस्त्रादि अर्पित करते हैं। श्रीराम के आदेश से भरत और शत्रुघ्न आने वाले नरेशों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने के लिये सर्वदा उद्यत रहते हैं।

पृथिवी के समस्त नरेशों के आगमन और उनके आदर-सत्कार के अतिरिक्त इस यज्ञ का प्रमुख आयोजन सुग्रीव, विभीषण और उनकी मानवेतर सेनाओं के उत्साहपूर्ण प्रबन्ध एवं

[४] रामायण उत्तर९१.१९-२०, पृ.१६४९।

आतिथ्य में चल रहा निर्बाध एवं भव्य अन्नदान ही दिखायी देता है। महाकवि वाल्मीकि श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में चल रहे इस भव्य अन्नदान का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

ईदृशं राजसिंहस्य यज्ञप्रवरमुत्तमम्।
नान्यः शब्दोऽभवत् तत्र हयमेधे महात्मनः।
छन्दतो देहि देहीति यावत् तुष्यन्ति याचकाः।
तावत् सर्वाणि दत्तानि क्रतुमुख्ये महात्मनः।
विविधानि च गौडानि खाण्डवानि तथैव च।
न निःसृतं भवत्योष्ठाद् वचनं यावदर्थिनाम्।
तावद् वानररक्षोभिर्दत्तमेवाभ्यदृश्यत ।।[५]

राजाओं में सिंह के समान पराक्रमी श्रीराम का यह श्रेष्ठ यज्ञ उत्तम विधि से चलने लगा। महात्मा श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में एक ही शब्द सुनाई पड़ता था – 'दीजिये, दीजिये, जब तक याचक सन्तुष्ट न हों तब तक देते जाइये।' महात्मा श्रीराम के उस महान् यज्ञ में देने वाले तब तक विभिन्न प्रकार के भोजन और गुड़ व खाण्ड से बने विभिन्न मिष्टान्न परोसते जाते थे जब तक खाने वाले सन्तुष्ट न हो जायें। खाने वालों के ओठों से किसी वस्तु की इच्छा प्रकट होने से पहले ही वानर और राक्षस वहाँ पहुँच उनकी इच्छा पूर्ण करते दिखायी देते थे।

श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में होने वाला यह भव्य अन्नदान ऐसा सम्पूर्ण होता है कि नैमिषारण्य में जुड़े अगणित लोगों में एक भी मलिन, दीन अथवा कृश नहीं दिखायी देता। वहाँ आये सभी लोग हृष्ट-पुष्ट और सन्तुष्ट ही दिखायी देते हैं –

न कश्चिन्मलिनो वापि दीनो वाप्यथवा कृशः।
तस्मिन् यज्ञवरे राज्ञो हृष्टपुष्टजनावृते ।।[६]

श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ में होने वाले इस महान् अन्नदान की अद्वितीयता और अतुलनीयता का वर्णन महाकवि वाल्मीकि अनेक श्लोकों में करते हैं, और अन्त में वे केवल इतना कह पाते

[५] रामायण उत्तर ९२.१०-१३, पृ.१६५०।
[६] रामायण उत्तर ९२.१३-१४, पृ.१६५०।

हैं कि एक वर्ष से भी लम्बी अवधि तक चलने वाले इस यज्ञ में कभी किसी वस्तु की कमी नहीं दिखायी दी, सब वस्तुओं की प्रचुरता ही रही। महाकवि वाल्मीकि के शब्दों में –

ईदृशो राजसिंहस्य यज्ञः सर्वगुणान्वितः।
संवत्सरमथो साग्रं वर्तते न च हीयते ॥[७]

श्रीसीता का पृथिवी प्रवेश

इस निर्बाध एवं भव्य अन्नदान की पृष्ठभूमि में चल रहे श्रीराम के इस महान् अश्वमेध यज्ञ में अनेक अद्भुत घटनायें घटती हैं। श्रीराम की सम्पूर्ण इहलीला का पूर्वदर्शन कर उसे आदिकाव्य रामायण में छन्दोबद्ध करने वाले महाकवि वाल्मीकि स्वयं यज्ञभूमि में पधारते हैं। उनके साथ महाकवि के आश्रम में उत्पन्न हुए श्रीराम के युग्मपुत्र लव और कुश भी आते हैं। जब श्रीसीता के लङ्कावास सम्बन्धी लोकापवाद के भय से श्रीराम उन्हें अयोध्या से निष्कासित कर देते हैं, तब श्रीसीता महाकवि वाल्मीकि के आश्रम में ही शरण लेती हैं। वहीं लव-कुश उत्पन्न होते हैं और वहीं स्वयं महाकवि वाल्मीकि से शिक्षा पाकर वे आदिकाव्य रामायण के गायन में पारङ्गत होते हैं। अब श्रीराम के अश्वमेध में पहुँचकर महाकवि वाल्मीकि लव-कुश को आदेश देते हैं कि वे यज्ञभूमि की विभिन्न वीथियों में घूम-घूम कर अपनी गायन कला का प्रदर्शन करें।

लव और कुश के शुद्ध एवं अत्यन्त मधुर गायन के स्वर श्रीराम के कानों तक पहुँचते हैं। अपने ही इहजीवन की कथा का ऐसा छन्दोबद्ध एवं सस्वर पाठ सुनकर श्रीराम विस्मित रह जाते हैं, और सम्मानित पौराणिकों, वैयाकरणों, सङ्गीतज्ञों, दार्शनिकों एवं अन्य विद्वानों तथा महान् राजाओं, मुनियों और सभी सुधीजनों से भरी अपनी सभा को एकत्र कर उन बालकों को गायन के लिये आमन्त्रित करते हैं। लव-कुश के आदिकाव्य रामायण का गायन प्रारम्भ करते ही सभा आनन्दविभोर हो उठती है और जैसे-जैसे कथा आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे यह स्पष्ट होता जाता है कि ये दोनों दिव्य बालक कोई अन्य नहीं, स्वयं श्रीराम के युग्मपुत्र ही हैं।

तब श्रीराम आग्रह करते हैं कि स्वयं श्रीसीता विद्वानों, मुनियों, राजाओं एवं अन्य महाजनों से भरी उस सभा में आयें और सबके समक्ष अपनी शुद्धता का प्रमाण दें। श्रीराम एकदा पहले भी श्रीसीता से अपनी पवित्रता का सार्वजनिक प्रमाण देने का आग्रह करते हैं – रावण पर श्रीराम की विजय के पश्चात् श्रीसीता जब अन्ततः लङ्का की अशोक वाटिका में कारावास से मुक्त होती हैं तब श्रीराम उन्हें पुनः रघुकुल में प्रतिष्ठित करने से पूर्व उनकी पवित्रता की सार्वजनिक परीक्षा

[७] रामायण उत्तर ९२.१९, पृ.१६५०।

लेते हैं। उस समय श्रीसीता अत्यन्त धैर्य के साथ वानरों एवं राक्षसों से भरी सभा में अग्निपरीक्षा से निकलती हैं। परन्तु अब पुनः वैसी ही परीक्षा का अवसर उपस्थित होने पर वे अपनी जननी पृथिवी से प्रार्थना करती हैं कि यदि उनकी शुद्धता सर्वथा अक्षुण्ण रही हो और यदि उन्होंने मन, कर्म और वाणी से सर्वदा केवल श्रीराम की ही अर्चना की हो तो देवी मही पुनः उन्हें अपने अङ्क में स्थान देवें। श्रीसीता के इस प्रकार प्रार्थना करते ही भूतल विदीर्ण हो जाता है, स्वयं देवी धरणी प्रकट हो श्रीसीता को अपनी बाहों में भरकर महापराक्रमी नागों के सिर पर स्थित एक भव्य सिंहासन पर बैठा देती हैं और श्रीसीता को लेकर वह सिंहासन तुरन्त पृथिवी के अङ्क में समा जाता है।

इस प्रकार महापराक्रमी राजा श्रीराम समाज के नियमों के प्रति नमन करते हुए और अपनी प्रजा के रञ्जन में प्रयासरत हो अपनी प्रिय पत्नी जानकी से वञ्चित हो जाते हैं। मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का तो यह व्रत ही है कि प्रजारञ्जन करते हुए वे न केवल अपना सर्वस्व अपितु स्वयं जानकी को भी न्योछावर कर देंगे।

श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ श्रीसीता के पृथिवी प्रवेश की रोमाञ्चकारी घटना के साथ समाप्त होता है। इस घटना से कुछ क्षणों के लिये स्वयं श्रीराम क्षुब्ध एवं स्तब्ध दिखायी देते हैं। परन्तु श्रीसीता के प्रस्थान के पश्चात् भी श्रीराम सहस्रों वर्ष तक राज्य करते हैं और श्रीसीता की सुवर्ण प्रतिमा को अपने वाम भाग में प्रतिष्ठित कर सहस्रों यज्ञों का सम्पादन करते हैं। वास्तव में श्रीराम का दीर्घ अवधि तक चलने वाला राज्य अपने आप में एक यज्ञ ही है। इस यज्ञ में श्रीराम इस सतत प्रयास में लीन रहते हैं कि कहीं कोई भूखा-प्यासा या निराश्रय न रहे, कहीं कोई आधि-व्याधि न होने पाये और सृष्टि के सनातन सहज प्रवाह में कहीं कोई अवरोध न आये। महाकवि वाल्मीकि श्रीराम के राज्य की सहज समरसता का वर्णन करते हुए लिखते हैं –

काले वर्षति पर्जन्यः सुभिक्षं विमला दिशः।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णं पुरं जनपदास्तथा।
नाकाले म्रियते कश्चिन्न व्याधिः प्राणिनां तथा।
नानर्थो विद्यते कश्चिद् रामे राज्यं प्रशासति ।।[८]

जब श्रीराम राज्य पर शासन करते हैं तब मेघ समय पर वर्षा करते हैं, सब समय सुभिक्ष रहता है और सब दिशायें स्वच्छ-प्रसन्न दिखायी देती हैं। पुर एवं जनपद दोनों ही

[८] रामायण उत्तर ९९.१३-१४, पृ.१६६१।

हृष्ट-पुष्ट लोगों से भरे रहते हैं। कोई अकाल मृत्यु नहीं मरता। किसी प्राणी को कोई व्याधि व्यथित नहीं करती। सृष्टि में कहीं कोई अनर्थ नहीं घटता।

ऐसा रामराज्य दीर्घकाल तक चलता रहता है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीराम की इहलीला की कथा तो उनके अश्वमेध यज्ञ और श्रीसीता के पृथिवीप्रवेश के साथ ही समाप्त हो जाती है। उसके उपरान्त तो श्रीराम मात्र काल के विधान को ही निभाते हैं और समय आने पर अपने बन्धुओं और पुरजनों समेत सरयू के जल में प्रविष्ट हो अपने परमधाम को चले जाते हैं।

यह कदाचित् स्वाभाविक ही है कि श्रीराम की इहयात्रा की यह चरम घटना एक निर्बाध एवं भव्य अन्नदान की पृष्ठभूमि में घटती है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के अन्तिम अध्याय श्रीसीता के पृथिवीप्रवेश और श्रीराम के श्रीसीता की सुवर्ण प्रतिमा को अपने वामपक्ष पर रख कर दीर्घकाल तक अकेले ही रामराज्य का सञ्चालन करते जाने के मर्मस्पर्शी वर्णन से भरे हैं और इन अध्यायों में हृष्ट, पुष्ट, तुष्ट एवं मानित जनों की बात पुनः पुनः गूँजती रहती है, मानो श्रीराम का परम ध्येय अपने सुख-दुःख का विचार किये बिना सतत अन्नदान चलाते हुए प्रजा को हृष्ट, पुष्ट, तुष्ट एवं मानित बनाये रखना ही हो।

राजा दशरथ का अश्वमेध यज्ञ

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण में एक अन्य भव्य अश्वमेध यज्ञ का वर्णन भी हुआ है। आदिकाव्य के प्रारम्भ पर ही राजा दशरथ पुत्रप्राप्ति की कामना से अश्वमेध का आयोजन करते हैं। राजा दशरथ और श्रीराम के इन दो भव्यतम यज्ञों के प्रसङ्ग और परिवेश में बहुत भिन्नता है। श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ उनकी इहलीला के प्रायः समापन की निराशाजनक अनुभूति करवाता है। राजा दशरथ का अश्वमेध सन्तानप्राप्ति की सुखद आकाङ्क्षा एवं श्रीराम के आसन्न अवतरण की प्रसन्नतामयी अपेक्षा से परिपूर्ण है। प्रसङ्ग और परिवेश के अनुरूप ही इन दो यज्ञों के लिये किये जाने वाले उपक्रम और आयोजन अपनी भव्यता और लय में सर्वथा भिन्न दिखते हैं।

श्रीराम के अश्वमेध के सभी उपक्रम एवं आयोजन तीव्र गति से चलते हैं। अगस्त्य मुनि के आश्रम से अयोध्या लौटकर पुष्पक विमान से उतरते ही श्रीराम शीघ्रता से यज्ञ के उपक्रम में जुट जाते हैं और अत्यन्त शीघ्रता का यह भाव यज्ञ के सम्पन्न होने तक बना रहता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो भावी स्वयं हाथ पकड़कर उन्हें आगे की मार्मिक घटनाओं की ओर खींचे ले जा रही हो।

राजा दशरथ का अश्वमेध यज्ञ

राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ के आयोजन सहज मन्थर गति से होते हैं। सन्तानप्राप्ति का अनमोल प्रसाद पाने की इच्छा से अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करने का विचार आने पर राजा दशरथ सबसे पहले अपने गुरुजनों एवं पुरोहितों के समक्ष अपनी इच्छा प्रकट करते हैं। इस शुभ कार्य के लिये उन सबके आशीर्वाद एवं अनुशंसा प्राप्त करने के पश्चात् वे अपने मन्त्रियों को यज्ञ के लिये सभी आवश्यक सामग्री जुटाने, सरयू के उत्तरी तट पर यज्ञभूमि का निर्माण करवाने और अन्य सभी प्रबन्ध प्रारम्भ करने का आदेश देते हैं। इस प्रकार अपने मन्त्रियों को यज्ञ के कार्य में नियुक्त करते हुए राजा दशरथ उन्हें विशेषतया सावधान करते हैं कि अश्वमेध जैसे महान् यज्ञ के सम्पादन में कोई त्रुटि रह जाने पर यजमान भयङ्कर अनिष्ट का भागी होता है, इसलिये उन्हें सायास ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि यज्ञ के लिये समुचित साधन-सामग्री प्रस्तुत रहे और यज्ञ विधिपूर्वक सम्पन्न हो। और तब राजा दशरथ अन्तःपुर में जाकर अपनी रानियों को अपने निर्णय से अवगत करवाते हैं तथा उन्हें यज्ञ की दीक्षा लेने के लिये तत्पर रहने के प्रति सचेत करते हैं।

इस प्रकार सब को सावधान एवं सचेत करने के उपरान्त राजा दशरथ अपने प्रमुख मन्त्री सुमन्त्र के सुझाव पर सुदूर अङ्गदेश की यात्रा पर निकल पड़ते हैं। सुमन्त्र का कहना था कि अङ्गदेश के राजा सोमपाद के जामाता ऋषि ऋष्यशृङ्ग ही राजा दशरथ के अश्वमेध के लिये उपयुक्त ऋत्विज होंगे। ऋषि ऋष्यशृङ्ग को सम्मानपूर्वक अयोध्या लिवा लाने के लिये राजा दशरथ स्वयं अपनी रानियों, मन्त्रियों एवं सेनाओं समेत अनेक वनों और नदियों को पार करते हुए अङ्गदेश पहुँचते हैं। राजा सोमपाद की अनुमति से ऋषि ऋष्यशृङ्ग राजा दशरथ के अनुरोध को स्वीकार कर लेते हैं और अपनी पत्नी शान्ता समेत राजा दशरथ के साथ अयोध्या के लिये प्रस्थान करते हैं।

अयोध्या में ऋष्यशृङ्ग एवं शान्ता का भव्य स्वागत-सत्कार होता है और वे दोनों लम्बे समय तक सुखपूर्वक राजा दशरथ के अन्तःपुर में निवास करते हैं। इस प्रकार अनेक दिन बीत जाते हैं। तब वसन्त ऋतु के आरम्भ में एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त प्राप्त होने पर राजा दशरथ यज्ञ का अनुष्ठान करने का मन बनाते हैं। वे अब ऋषि ऋष्यशृङ्ग का विधिपूर्वक अपने प्रधान ऋत्विज के रूप में वरण करते हैं और उनके आदेश से शक्तिशाली वीरों के संरक्षण में यज्ञ के अश्व को सम्पूर्ण भूमण्डल पर विचरण के लिये भेजते हैं। और पुनः गुरुजनों का आशीर्वाद प्राप्त कर पुनः अपने मन्त्रियों को सरयू के तट पर यज्ञभूमि का निर्माण करने और यज्ञ के लिये सभी आवश्यक साधन-सामग्री जुटाने के कार्य के प्रति सचेत करते हैं।

यज्ञ के आयोजन के सब उपक्रम करते हुए एक और वर्ष बीत जाता है। तब वसन्त ऋतु के

आगमन पर राजा दशरथ वसिष्ठ मुनि के पास जाकर उनसे यज्ञ के सम्पादन का दायित्व स्वयं सँभालने का आग्रह करते हैं। वसिष्ठ मुनि राजा दशरथ के आग्रह को स्वीकार कर लेते हैं, और तब कहीं राजा दशरथ के यज्ञ के आयोजन में वैसी शीघ्रता का आभास आ पाता है जैसी शीघ्रता श्रीराम के अश्वमेध में प्रारम्भ से ही दिखायी देती है। अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने का निर्णय लेने के तुरन्त उपरान्त श्रीराम द्वारा लक्ष्मण को दिये गये निर्देशों के अनुरूप ही अब वसिष्ठ मुनि यज्ञसम्बन्धी प्रबन्धों के सम्पादन के लिये स्पष्ट एवं विस्तृत निर्देश देते हैं। विद्वान्, धर्मात्मा एवं यज्ञकर्म में कुशल जनों को बुलाकर वे उन्हें यज्ञकर्म में नियुक्त करते हैं। स्थपतियों, काष्ठकारों एवं अन्य शिल्पियों को यज्ञभूमि के निर्माण में लगाते हैं और सुमन्त्र को पृथिवी के सभी राजाओं और सभी साधारण जनों को यज्ञ के लिये आमन्त्रित करने के लिये कहते हैं।

जैसे श्रीराम लक्ष्मण को समस्त राजाओं एवं समस्त साधारण जनों को शीघ्रता से यज्ञ के लिये आमन्त्रित करने का निर्देश देते हैं, प्रायः वैसे ही वसिष्ठ मुनि सुमन्त्र से कहते हैं –

निमन्त्रयस्व नृपतीन् पृथिव्यां ये च धार्मिकाः।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्याञ्शूद्रांश्चैव सहस्रशः।
समानयस्व सत्कृत्य सर्वदेशेषु मानवान्॥[९]

पृथिवी के सभी धर्मनिष्ठ राजाओं को आमन्त्रित करो। ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों को सहस्रों की संख्या में बुला भेजो। सब देशों के समस्त चतुर्वर्गीय एवं वर्णेतर जनों को सम्मानपूर्वक बुलवा लो।

अपने समय के श्रेष्ठतम राजाओं को आमन्त्रित करने के लिये वसिष्ठ मुनि विशेष प्रबन्ध करते हैं। मिथिलाधिपति शूरवीर एवं सत्यवादी राजा जनक, देवतुल्य काशिराज, राजा दशरथ के वयोवृद्ध श्वशुर केकयराज, राजा दशरथ के परम मित्र एवं उनके यज्ञ के प्रधान ऋत्विज ऋषि ऋष्यशृङ्ग के श्वशुर अङ्गराज रोमपाद, कोसलराज भानुमान् और मगधराज प्राप्तिज्ञ को स्वयं सुमन्त्र जाकर सम्मानपूर्वक लिवा लाते हैं। पूर्व देश के महान् नरेशों, पश्चिम में सिन्धु-सौवीर एवं सौराष्ट्र के राजाओं और दक्षिण देश के समस्त भूपालों को बुलाने के लिये राजा दशरथ का सन्देश देकर विशेष बड़भागी दूत भेजे जाते हैं।

वसिष्ठ मुनि के निर्देशन में श्रीराम के अश्वमेध से कहीं अधिक भव्य एवं विस्तृत यज्ञभूमि का निर्माण होता है। सरयू के उत्तरी तट पर ब्राह्मणों के लिये शत-शत सुन्दर घर बनाये जाते

[९] रामायण *बाल* १३.२०-२१, पृ.५५।

हैं। वैसे ही सुन्दर एवं विस्तृत घर अन्य सब पुरवासियों और देश-विदेश से आने वाले साधारण जनों के लिये बनते हैं। बाहर से आने वाले राजाओं के लिये पृथक्-पृथक् प्रासाद बनाये जाते हैं, उनके हाथी-घोड़ों के लिये विशेष शालाएँ बनती हैं और उनके साथ आने वाले विदेशी सैनिकों के लिये छावनियों का निर्माण होता है। इन सब घरों, प्रासादों, शालाओं, छावनियों और सामान्य शय्यागृहों को अन्नपान की प्रचुर सामग्री और सब प्रकार के साधनों-उपकरणों से सज्जित किया जाता है।

वसिष्ठ मुनि का आग्रह है कि यज्ञ में आने वाले सब लोगों का उपयुक्त स्वागत-स्त्कार हो और सब को विधिवत् एवं ससम्मान भोजन परोसा जाये। इस विषय में विशेष निर्देश देते हुए वे कहते हैं –

दातव्यमन्नं विधिवत् सत्कृत्य न तु लीलया।
सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः।
न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि ॥[१०]

सब को सत्कारपूर्वक विधिवत् अन्न परोसा जाना चाहिये। कभी भी अनादर व अश्रद्धा से अन्न नहीं देना चाहिये। सब प्रबन्ध ऐसे होने चाहियें कि यज्ञभूमि में पहुँचकर समस्त वर्ण अपने आप को सत्कृत एवं सम्मानित अनुभव करें। काम-क्रोध के वशीभूत होकर भी कदापि किसी की अवज्ञा न हो पाये।

वास्तव में सब के स्वागत-सत्कार, रहने-सोने एवं खाने-पीने के प्रबन्धों के लिये उपयुक्त नियोजन करने के उपरान्त ही वसिष्ठ मुनि सुमन्त्र को सब को निमन्त्रित करने के लिये कहते हैं। उपयुक्त समय पर जब विभिन्न प्रबन्धों के लिये नियुक्त किये गये लोग आकर उन्हें अपने-अपने कार्य के सम्पादन की सूचना देते हैं तो वे एकदा पुनः उन्हें अतिथियों के आदर-सम्मान की अनिवार्यता के प्रति सचेत करते हुए कहते हैं –

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा।
अवज्ञया कृतं हन्याद् दातारं नात्र संशयः ॥[११]

कभी किसी को कोई वस्तु अनादरपूर्वक न दी जाये। मात्र लीला में, खेल-खेल में

[१०] रामायण *बाल* १३.१४-१५, पृ.५४।
[११] रामायण *बाल* १३.३३-३४, पृ.५५।

भी ऐसा नहीं होना चाहिये। क्योंकि अनादर एवं अश्रद्धा से दिया गया दान देने वाले को नष्ट कर देता है। यह निश्चित है, इसमें कोई संशय सम्भव नहीं।

यज्ञ एवं अन्नदान

सब प्रबन्ध ठीक से सम्पादित करने में कई दिन बीत जाते हैं। धीरे-धीरे आमन्त्रित नरेश बहुमूल्य उपहार लेकर अयोध्या पहुँचने लगते हैं। तब वसिष्ठ मुनि राजा दशरथ को सब प्रबन्धों के सम्पन्न होने की सूचना देते हैं और उनसे अपनी पत्नियों सहित यज्ञ मण्डप में चलकर यज्ञ की दीक्षा लेने का आग्रह करते हैं। इस मध्य एक वर्ष पूरा होने पर यज्ञ का अश्व भी पृथिवीभ्रमण कर लौट आता है। इतने सारे उपक्रमों एवं आयोजनों के पश्चात् राजा दशरथ का अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ होता है।

ऋषि ऋष्यशृङ्ग के नेतृत्व में विद्वान् एवं कुशल पुरोहित अश्वमेध यज्ञ सम्बन्धी सब कर्म सम्पूर्ण विधि-विधान से सम्पादित करते हैं। वहाँ एकत्रित विद्वान्, वेदविद् एवं महान् ऋषि शुद्ध स्वर एवं लय के साथ वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं। राजा दशरथ के इस महान् अश्वमेध यज्ञ में कोई विपरीत आहुति नहीं पड़ती, किसी मन्त्र के उच्चारण में कोई त्रुटि नहीं रहती, किसी कर्म के सम्पादन में कहीं कुछ शेष नहीं रह पाता।

यह सब विस्तृत विधि-विधान एवं मन्त्रोच्चारण एक भव्य अन्नदान की पृष्ठभूमि में चलता है। श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के समान ही राजा दशरथ के इस यज्ञ में भी अन्नदान सभी कर्मों के केन्द्र में स्थित दिखायी देता है। इन दोनों यज्ञों के उपक्रम, परिवेश एवं उपलक्ष्य में इतना अन्तर होते हुए भी महाकवि वाल्मीकि के आदिकाव्य में दोनों में होने वाले अन्नदान का वर्णन प्रायः एक-सा ही बन पड़ा है। राजा दशरथ के अश्वमेध यज्ञ में चल रहे अन्नदान का वर्णन करते हुए महाकवि वाल्मीकि लिखते हैं –

न तेष्वहःसु श्रान्तो वा क्षुधितो वा न दृश्यते।
नाविद्वान् ब्राह्मणः कश्चिन्नाशतानुचरस्तथा।
ब्राह्मणा भुञ्जते नित्यं नाथवन्तश्च भुञ्जते।
तापसा भुञ्जते चापि श्रमणाश्चैव भुञ्जते।
वृद्धाश्च व्याधिताश्चैव स्त्रीबालाश्च तथैव च।
अनिशं भुञ्जमानानां न तृप्तिरुपलभ्यते।
दीयतां दीयतामन्नं वासांसि विविधानि च।

इति संचोदितास्तत्र तथा चक्रुरनेकशः।
अन्नकूटाश्च दृश्यन्ते बहवः पर्वतोपमाः।
दिवसे दिवसे तत्र सिद्धस्य विधिवत् तदा।
नानादेशादनुप्राप्ताः पुरुषाः स्त्रीगणास्तथा।
अन्नपानैः सुविहितास्तस्मिन् यज्ञे महात्मनः।
अन्नं हि विधिवत्स्वादु प्रशंसन्ति द्विजर्षभाः।
अहो तृप्ताः स्म भद्रं ते इति शुश्राव राघवः॥[१२]

यज्ञ के दिनों कोई भूखा-प्यासा अथवा क्लान्त-श्रान्त नहीं दिखायी देता। उस यज्ञ में कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं दिखता जो विद्वान् न हो अथवा जिसके साथ शत-शत अनुचर न हों।

उस यज्ञ में अबाध अन्नदान चल रहा है – ब्राह्मण भोजन कर रहे हैं, शूद्र भोजन कर रहे हैं, तपस्वी और संन्यासी भोजन कर रहे हैं, वृद्ध व रोगी, स्त्रियाँ व बालक सब भोजन कर रहे हैं। वे सब निरन्तर खाते जाते हैं, किसी का मन नहीं भरता।

'अन्न दो! विविध वस्त्र दो!' के निर्देशों से प्रेरित हो बाँटने वाले घूम-घूम कर अन्न एवं वस्त्र बाँट चले जा रहे हैं।

उस यज्ञ में प्रतिदिन विधिवत् पके हुए अन्न के पर्वतों समान ऊँचे ढेर लगते हैं और प्रतिदिन विभिन्न देशों से आये हुए स्त्री-पुरुषों के समूह अन्नपान से तृप्त होते हैं।

द्विजश्रेष्ठ अन्न की प्रशंसा करते हुए निरन्तर रघुकुल के राजा दशरथ को इस प्रकार आशीर्वाद दे रहे हैं –
'यह अन्न विधिवत् पकाया गया है। बहुत स्वादिष्ट है। हम तृप्त हुए। राघव! आपका कल्याण हो।'

राजा दशरथ के अश्वमेध में हुए अन्नदान का यह वर्णन श्रीराम के अश्वमेध में हुए अन्नदान से भी अधिक भव्य दिखता है। राजा दशरथ के यज्ञ के आयोजन की मन्थर गति के अनुरूप ही इस यज्ञ के सभी कर्म बहुत विस्तार से सम्पन्न किये जाते हैं। अश्वमेध की समाप्ति के तुरन्त पश्चात् पुत्रेष्टि यज्ञ का अनुष्ठान होता है और वैसे ही विस्तार के साथ पुत्रेष्टि के सभी कर्म

[१२] रामायण *बाल* १४.११-१७, पृ.५७।

सम्पादित किये जाते हैं। महाकवि वाल्मीकि के आदिकाव्य में इस सम्पूर्ण विधि-विधान का विशद एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। परन्तु इस सब के मध्य अन्नदान की प्रधानता तो बनी ही रहती है। रामायण की प्रायः समाप्ति पर होने वाले श्रीराम के अश्वमेध यज्ञ के समान रामायण के प्रारम्भ में हुए राजा दशरथ के इस अश्वमेध यज्ञ में भी अन्न और अन्नदान का माहात्म्य ही व्याप्त दिखायी देता है।

रामराज्य

महाकवि वाल्मीकि का आदिकाव्य इस प्रकार एक भव्य अन्नदान से प्रारम्भ होता है और वैसे ही भव्य अन्नदान से समाप्त होता है। श्रीराम की सम्पूर्ण इहलीला मानो इन दो अन्नदानों के मध्य ही घटती है। इसलिये यह सहज-स्वाभाविक ही दिखता है कि जब भी महाकवि वाल्मीकि रामराज्य का चित्रण करते हैं, उनके चित्रण में सब ओर अन्न की प्रचुरता और सभी जीवों के निर्बाध स्वस्थ एवं हृष्ट-पुष्ट जीवन की छवि पुनः पुनः उभरती रहती है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण के प्रारम्भ में ही भावी रामराज्य का चित्र प्रस्तुत करते हुए महाकवि लिखते हैं –

प्रहृष्टमुदितो लोकस्तुष्टः पुष्टः सुधार्मिकः।
निरामयो ह्यरोगश्च दुर्भिक्षभयवर्जितः।
न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।
नार्यश्चाविधवा नित्यं भविष्यन्ति पतिव्रताः।
न चाग्निजं भयं किंचिन्नाप्सु मज्जन्ति जन्तवः।
न वातजं भयं किंचिन्नापि ज्वरकृतं तथा।
न चापि क्षुद्भयं तत्र न तस्करभयं तथा।
नगराणि च राष्ट्राणि धनधान्ययुतानि च।
नित्यं प्रमुदिताः सर्वे यथा कृतयुगे तथा॥[१३]

श्रीराम के राज्य में सब लोग प्रसन्न एवं सुखी होंगे। सब पुष्ट एवं सन्तुष्ट रहेंगे। सब धर्म में प्रतिष्ठित होंगे। सब सर्वदा स्वस्थ रहेंगे, किसी प्रकार की कोई व्याधि किसी को नहीं सतायेगी। कभी किसी को दुर्भिक्ष का कोई भय नहीं रहेगा।

[१३] रामायण *बाल* १.९०-९४, पृ.३०।

कोई पिता पुत्रमरण का दुःख नहीं झेलेगा। कोई स्त्री विधवा नहीं होगी। सभी सदा पतिव्रत में निष्ठ रहेंगी।

अग्नि से कोई अनिष्ट नहीं होगा। कोई जीव जल में नहीं डूबेगा। किसी प्रकार के ज्वर का किञ्चित् भी भय नहीं रहेगा। न ही किसी को भूख के विषय में चिन्तित होना पड़ेगा। कभी कहीं कुछ चुराया नहीं जायेगा।

नगर और राष्ट्र धन-धान्य से परिपूर्ण होंगे। सभी सदा प्रसन्न एवं सुखी होंगे। रामराज्य में मानो सतयुग ही लौट आयेगा।